□ डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठी
एम० ए०, पी-एच० डी० डी० लिट्०
उज्जैन (म० प्र०)

जैन-स्तोत्र-साहित्य के सन्दर्भ में

आकार–चित्ररूप स्तोत्रों का संक्षिप्त निदर्शन

स्तोत्र-रचना का प्रमुख उद्देश्य

विश्व-साहित्य की सृष्टि का मूल स्तुति-स्तोत्रों में निहित है। यह रचना मानव के जन्म से मरण-पर्यन्त ही नहीं, अपितु मरणोत्तर की कामनाओं को भी अपने में समेटे हुई है। इस दृष्टि से मम्मट के काव्य-लक्षण[1] में प्रयुक्त **'शिवेतर-क्षति'** पद स्तोत्र-रचना के प्रमुख उद्देश्य की पूर्ति करता है। संसार की विचित्र गतिविधि के समक्ष मानव अपनी विह्वलताओं से छुटकारा पाने के लिए अपने इष्ट के प्रति जो काव्यमयी वाणी में कथन करता है, वही 'स्तुति' अथवा **'स्तोत्र'** कहलाता है। इनमें **'सुख की आकांक्षा, कृपा की कामना, अपेक्षित की प्रार्थना, उपेक्षणीय की निवृत्ति'** आदि भावनाओं का प्रकटन होता है और सबके मूल में रहती है **"इष्ट की प्रशंसा।"**—कृतज्ञता-ज्ञापन तथा आत्मनिवेदनरूपी दो तटों के मध्य बहती हुई स्तोत्र-सरिता में स्तोतव्य के प्रशंसनीय गुणों का आख्यान ही स्तोत्र बनता है।[2] इष्टदेव का नाम-स्मरण और उसके गुणों का कथन किसी भी रूप में किया जाये, वह 'स्तोत्र' ही है।[3]

स्तोत्र की काव्यात्मकता

काव्य-स्वरूप निर्धारण में रचना की 'बन्ध-सापेक्षता और बन्ध-निरपेक्षता' दोनों ही महत्वपूर्ण रीढ हैं। इसके साथ ही उक्ति-वैशिष्ट्य जब इसमें प्रविष्ट होता है तो वह काव्यात्मक स्वरूप को प्राप्त हो जाती है। स्तोत्र में रसविशेष का समावेश सहज होता है। कथा की अथवा कथन की पर-स्पर-सापेक्षता अपेक्षित नहीं होती। अतः स्तोत्र को 'मुक्तकों का समूह' भी कहा जाता है। बन्ध की सापेक्षता स्तोत्र के क्षेत्र में उतनी महत्व-पूर्ण नहीं मानी गई है और वह सम्भव भी नहीं होती। क्योंकि स्तोत्र में आने वाले पद्यों में से एक पद्य भी अपने आप में परिपूर्ण भावों को व्यक्त कर देता है। इतना होने पर भी स्तोत्र की काव्यात्म-

---

१ काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये। सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ।।
—काव्यप्रकाश, १-१

२ गुणकथनं हि स्तुतित्वं, गुणानामसद्भावे स्तुतित्वमेव हीयते। —शास्त्रमुक्तावली, पू. नी. १-२-७।

३ प्रतिगीत-मन्त्रसाध्यं स्तोत्रम्। छन्दोबद्धस्वरूपं गुणकीर्तनं वा।
—ललिता सहस्रनाम, सौभाग्यभास्करभाष्य, पृ. १८८।

साध्वीरत्न कुसुमवती अभिनन्दन ग्रन्थ
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कता में सभी काव्योचित गुणों की स्थिति तो अवश्य ही समाविष्ट रहती है, जो काव्य की आत्मा को उल्लसित करते हैं, उसमें शिवत्व की प्रतिष्ठा करते हैं और अशिवत्व की निवृत्ति के लिए उत्प्रेरित करते हैं। इसके साथ ही काव्य शरीर को औज्ज्वल्य प्रदान करने वाले वे तत्व भी स्तोत्रों में पूर्णतः विकसित होते हैं जिन में साहित्य की कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए अलंकारों का साहचर्य प्राप्त किया जाता है। अलंकार 'शब्दगत, अर्थगत और शब्दार्थगत' ऐसे तीन प्रकारों में व्याप्त हैं। इनमें 'शब्दगत अलंकार' शब्द-स्वरूप की सौन्दयोपयोगी प्रयोगगत व्यवस्था से 'भाषा की परिष्कृत सृष्टि, नाद संसार की परिव्याप्ति, चमत्कार-प्रवणता, भाव-तीव्रता और विशिष्ट अन्तर्दृष्टि का सहज आनन्द' प्राप्त करते हैं।

वस्तु जगत् के प्रच्छन्न भावों को गति प्रदान करने वाले इस शब्दालंकार के अनेक भेद-प्रभेद हैं, उनमें 'चित्रालंकार' भी एक है। इसमें 'चित्र' शब्द 'आश्चर्य और आकृति' के अर्थ में प्रयुक्त है। वर्णों की संयोजना के द्वारा श्रोता और पाठक दोनों को विस्मित कर देना और रचनागत वैशिष्ट्य से आनन्दित कर देना इसका सहज गुण है। इसका ही एक प्रभेद—'आकृतिमूलक चित्रालंकार' है।[1] यह विभिन्न आकृतियों में पद्य अथवा पद्यों को लिखने से प्रकट होता है। इस विशिष्ट विधा को स्तोत्रकार आचार्यों ने बहुत ही स्वाभाविक रूप से अपनाया है। यहाँ जैन स्तोत्रकारों द्वारा स्वीकृत चित्रालंकार-मूलक स्तोत्रों में **'आकार-चित्ररूप स्तोत्रों का संक्षिप्त निदर्शन'** प्रस्तुत है।

आकार चित्रकाव्यरूप जैन-स्तोत्र

'आकार-चित्र-काव्य' में किसी एक प्रकार-विशेष को ध्यान में रखकर स्तोत्र की अथवा स्तोत्रगत पद्य की रचना की जाती है, तब उसे हम **'एक चित्रालंकार युत स्तोत्र'** की संज्ञा देंगे और यदि एक ही स्तोत्र में अनेक प्रकार के चित्रालंकारों का प्रयोग किया जाता हो तो उसे **'अनेक चित्रालंकार-युत स्तोत्र'** की संज्ञा देंगे। जैनाचार्यों ने इन दोनों प्रकारों को अपने स्तोत्रों में अपनाया है। इस दृष्टि से प्रथम 'एक चित्रालंकार-युत स्तोत्र' की परम्परा का परिचय प्रस्तुत है—

१—स्तुति विद्या : आचार्य समन्तभद्र

दिगम्बर जैन स्तुतिकारों में आद्य स्तुतिकार आचार्य श्री समन्तभद्र ने ईसा की द्वितीय शताब्दी में **'स्तुति विद्या'** नामक इस **'जिन-शतक'** में चतुर्विंशति जिनों की भावप्रवण स्तुति की है। यह पूरी स्तुति **'मुरज बन्धों'** के अनेक रूप प्रस्तुत करती है। रचना **'गति-चित्रों'** की भूमिका पर निर्मित होने के कारण चक्र-बन्धों की सृष्टि में भी पूर्णतः समर्थ है। यहाँ तक कि कुछ पद्य तो **'अनुलोम-विलोमरूप'** में भी पढ़े जाने पर एक पद्य से ही द्वितीय पद्य की सृष्टि करते हैं। प्रायः सभी पद्य अनुष्टुप् छन्द में हैं एक पद्य द्रष्टव्य है—

रक्ष माक्षर वामेश शमी चारुरुचानुतः।
भो विभोनशनाजोरुनम्रेन विजरामय ॥८६॥

यही पद्य चौथे पद के अन्तिमाक्षर से विपरीत पढ़ने पर अन्य पद्य बनता है और श्री अरनाथ की स्तुति प्रस्तुत करता है।

२—शान्तिनाथ स्तोत्र : आचार्य गुणभद्र

दिगम्बर सम्प्रदाय के ही आचार्य गुणभद्र ने आठवीं शताब्दी में एक 'शान्तिनाथ-स्तोत्र' की रचना की जिसमें **'अष्टदल कमलबन्ध'** की रचना की है जिसमें पंखड़ियों में ३-३ अक्षर और मध्यकर्णिका में एक अक्षर 'न' श्लिष्ट है। यथा—

---

१ वस्तुतः 'चित्रालंकार' के परिवेष में—१—स्वर, २—स्थान, ३—वर्ण, ४—गति, ५—प्रहेलिका, ६—च्युत, ७—गूढ, ८—प्रश्नोत्तर, ९—समस्या-पूर्ति, १०—भाषा और ११—आकार आदि मुख्य भेद एवं इन प्रत्येक के विविध उपभेद हैं। द्रष्टव्य—'शब्दालंकार-साहित्य का समीक्षात्मक सर्वेक्षण, पृ० १२६ से १३४।

साध्वीरत्न कुसुमवती अभिनन्दन ग्रन्थ
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद्माभेन धृतो येन समयो नयपावनः ।
स्वर्लोकेन कृतामानः पूयाज्जिनः स नो मनः ।।७।।
इत्यादि ।

३—सर्वजिन-स्तव : श्री धर्मघोष सूरि

प्रस्तुत स्तोत्र द्वारा कवि ने चौबीस दलवाले 'कमल-बन्ध' की योजना की है । इसमें कुल ८ पद्य हैं जिनमें अन्तिम पद्य पुष्पिका-रूप है । पहला पद्य परिधि में लिखा जाता है अन्य छह पद्यों के प्रत्येक चरण के तीन-तीन खण्ड एक-एक पत्र में रहते हैं । चरण में ५-५ और ६ अक्षरों के बाद के अक्षर तीन बार आवृत्त होते हैं जो २४ लघुकर्णिकाओं में निवष्ट हैं । प्रथम पद्य इस प्रकार है—

नम्राखण्डल मौलिमण्डलमिलन्मन्दारमालोच्छलत्—
सान्द्रामन्द मरन्दपूर सुरभीभूतक्रमाम्भोरुहान् ।
श्रीनाभिप्रभवप्रभुप्रभृतिकाँस्तीर्थंकरान् शंकरान्
स्तोष्ये साम्प्रत काललब्ध जननान् भक्त्या चतुर्विंशतिम् ।।१।।

श्री धर्मघोष सूरि श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के आचार्य थे तथा इनका समय सन् १२२८ ई० माना जाता है ।

४—सर्वजिन साधारण स्तवन : श्री धर्मशेखर पंडित

पण्डित प्रवर श्री धर्मशेखर का यह स्तोत्र २१ पद्यों में निर्मित है । इसमें कवि ने '६४ दलवाले कमलबन्ध' की योजना की है । अन्तिम पद्य परिधि-रूप है । इनका समय सन् १४४३ ई० (?) माना गया है, किन्तु कुछ विद्वान इन्हें १३वीं शती का मानते हैं । रचना में गाम्भीर्य और कौशल दोनों ही स्पृहणीय हैं । यथा—

जीयास्त्वं देव भद्र प्रवर कुट जगच्चन्द्र देवेन्द्रवन्द्यः ।
श्री विद्यानन्द दान-प्रवर-गुणनिधे धर्मघोष प्रवीणः ।।
मुक्तासोम प्रभाली-धवल गुरुयशोनाथ निःशेषविश्वं,
स्फारस्फूर्जत् प्रभावः शमदमपरमानन्दयाशु प्रकामम् ।।७।।

५—पञ्चजिन हार-स्तव : श्री कुलमण्डन सूरि

कुलमण्डन सूरि १३वीं शती ई० के अन्तिम चरण में हुए थे । आपने अनेक स्तोत्रों की रचना की थी । उनमें उपर्युक्त स्तोत्र २३ पद्यों में निर्मित है । इसमें ४ पद्य ऋषभ, ४ शान्ति, ५ नेमि, ४ पार्श्व और ४ महावीर से सम्बद्ध हैं । 'हार-बन्ध' की योजना पुष्पमाला के समान है तथा उसमें कहीं छोटे और कहीं बड़े पुष्प हैं, इसके कारण उनके दलों की संख्या भी विषम है । मध्य में एक स्वस्तिक के आकार वाला चन्द्रक (लॉकेट) भी है । इस दृष्टि से यह बन्ध अति श्रम साध्य तो है ही । इसका प्रारम्भ-पद्य इस प्रकार है—

गरीयो गुणश्रेण्यरेणं प्रवीणं,
परार्थे जगन्नाथ धर्मं धुरीणम् ।
धराधारमादिप्रभो रंगरम्यं,
स्तुवे त्वां बुधध्येय धौतारिवारम् ।।१।।

६—श्री वीर हरि-स्तव : श्री कुलमण्डन सूरि

इस स्तव में कवि ने विविध छन्दों का प्रयोग करते हुए १७ पद्यों में 'हार-बन्ध' की रचना की है । हार में २० मणियाँ हैं । बीच में २-२ चतुर्दलात्मक पुष्प, मध्य में 'नायक दल' और उस पर सप्तदल-पुष्प तथा मध्य में दोरक ग्रन्थि है ।[1]

७—श्री वीरजिन स्तुति : श्री कुलमण्डन सूरि

इस स्तुति में पहला और इक्कीसवाँ पद्य शार्दूलविक्रीडित में हैं तथा अन्य पद्य २ से १९ तक अनुष्टुप् में छन्द हैं । अन्तिम पद्य में विशेष रूप से १९ बन्धों द्वारा श्रीवीर की स्तुति करने का परिचय भी दिया है । किन्तु यह 'अष्टादशार चक्रबन्धमय स्तुति' है । इसमें कर्णिकाक्षर 'त' है और उसी से सभी पद्यों का आरम्भ होता है । इस प्रकार यह स्तुति अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें 'एक चित्र बन्धरूप' और 'अनेक चित्रबन्धरूप' दोनों प्रक्रियाओं का प्रयोग हुआ है । इसका और भी एक महत्व स्मरणीय है कि

१ इस स्तव का मूलपाठ हमने 'महावीर परिनिर्वाण स्मृति ग्रन्थ' (लालबहादुर शास्त्री) केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली, से प्रकाशित में 'महावीरस्य चित्रकाव्यार्चना' में दिया है ।

साध्वीरत्न कुसुमवती अभिनन्दन ग्रन्थ
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके चित्रण ने जो चक्र बनता है, उसके स्वरों में लिखित अर्धालियों में क्रमशः ४, ८, १२ और १६ संख्या के अक्षर चक्रावर्तित क्रम से एकत्र करने पर उनसे एक शार्दूलविक्रीडित पद्य भी पृथक् बनता है जिसका पहला अक्षर श्लिष्ट होकर १९वें अक्षर के रूप में प्रयुक्त होता है। इसका द्वितीय पद्य इस प्रकार है—

तनुते यन्नुतिं जम्भजिद्राजी मुद्रिता द्रुतम् ।
तं स्तुवे वीततन्द्राजी-भयं भावेन भास्वता ।।१।।

इस पद्य से 'मुशल बन्ध' भी बनता है। रुद्रट कवि ने इस प्रकार के 'अष्टार चक्रबन्ध' का उदाहरण दिया है और उसी से प्रेरित होकर यह स्तुति १८ अक्षर तक पहुँचाई है। इसमें जो अन्य बन्ध बनते हैं, उन का सूचन निम्नलिखित पद्य में द्रष्टव्य है—

१ २ ३ ४ ५ ६—७
चक्रोऽयोमुख-शूल-शङ्ख-सहिते सुश्रीकरी-चामरे,
७ ८ ९ १० ११ १२ १३
सीरं भल्ल-शरासने असिलता शक्त्यातपत्रे रथः ।
१४ १५ १६ १७ १८ १९
कुम्भार्धभ्रम-पङ्कजानि च शरस्तस्मात् त्रिशूलाशनी,
चित्रैरेभिरभिष्टुतः शुभधियां वीर ! त्वमेधिश्रिये।२०।

वस्तुतः इस स्तुति में १८ अन्य चित्र बन्ध हैं और १ यह महाचक्र बन्ध बनता है। अतएव इसे 'अष्टादश-चित्र-चक्र-विमलं' कहा गया है।

८—वर्धमानजिन-स्तवः : श्रीधर्मसुन्दर(सिद्ध)सूरि

इसी शती के कनकसूरि के शिष्य धर्मसुन्दर द्वारा रचित वर्धमानजिन स्तव 'आतपत्र-बन्धमय' है। यह साधारण छत्र-बन्धों की अपेक्षा अपना विशिष्ट स्थान रखती है। इसमें १५ पद्य हैं और इसका चित्रण सिंहासन सहित उस पर लगे हुए छत्र के समान है। इसका प्रथम पद्य इस प्रकार है—

श्री वर्धमानं ह्यभिनौम्यमानममानदेवैः परिणूयमानम् ।
अहं महं तं सुगुणैरनन्तं पवित्रछत्राकृति-काव्यबन्धात् ।[1]

९—कमल-बन्ध-स्तवः श्री उदयधर्मगणि

इस कृति का पूरा नाम 'महावीर जिन स्तवन' है। १३वीं शताब्दी के बृहत् तपागच्छीय रत्नसिंह सूरि के शिष्य श्री उदयधर्म गणि द्वारा निर्मित यह स्तवन १८ पद्यों का है। १६ पद्यों से ३२ दलों का कमलबन्ध' बनता है और सत्रहवां पद्य परिधि में लिखा जाता है, जिसके कुछ अक्षर पत्राक्षरों से श्लिष्ट होते हैं। इस पद्य से कविनाम, काव्यनाम और गुरुनाम भी प्राप्त होते हैं। यथा—

सन्नमत् त्रिदशवन्द्यपदं श्रीवर्द्धमानममलं विजित्तारम् ।
संस्तवीमि भवसागरपारं प्राप्तुरिच्छुरुरु सद्गुणरत्नम् ।२।

अन्तिम पद्य पुष्पिकारूप है, जो 'श्री सिद्धार्थ-नरेन्द्र नन्दन' इत्यादि पद से प्रारम्भ होता है।[2]

१०—श्री वीरजिन-स्तव—श्री जिनप्रभ सूरि

श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के प्रसिद्ध आचार्य श्री जिनप्रभ के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि वे 'प्रति-दिन एक स्तुति की रचना करके ही आहार ग्रहण करते थे।' इनकी सात सौ स्तुतियाँ थीं, जिनमें से अब कुछ ही प्राप्त हैं। उनमें भी आकार चित्रकाव्य रूप स्तुतियों में उपर्युक्त स्तोत्र अनेक चित्र-काव्यों से संश्लिष्ट है। इसकी रचना में—'कमल (८ दल और २४), खड्ग, चक्र (षडर), चामर, त्रिशूल, धनुष, पद, बीजपूर, मुरज, मुशल, शक्ति, शर, हल, हार आदि बन्ध तथा लोम-विलोम पद्य, निर्मिल हैं। विशेषतः यहाँ स्तुत्यनामगर्भ बीजपूर और कविनाम गुप्त षडरचक्र—तथा चामर बन्धों की योजना महत्वपूर्ण है। स्तोत्र के प्रारम्भ में चित्र स्तवन की प्रतिज्ञा श्री जिनप्रभ सूरि ने इस प्रकार की है—

१-२ इनके भी मूल शुद्ध पाठ वहीं द्रष्टव्य हैं।

साध्वीरत्न कुसुमवती अभिनन्दन ग्रन्थ
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रैः स्तोष्ये जिनं वीरं, चित्रकृच्चरितं मुदा ।
प्रतिलोमानुलोमाद्यैः, स्वङ्गाद्यैश्चारुभिः ॥

'चामर-बन्ध' का पद्य इस प्रकार है—

श्रीमद्धामसमग्रविग्रह ! मया चित्रस्तवेनामुना,
नूतस्त्वं पुरुहूतपूजित विभो सद्यः प्रसद्येधि माम् ।
ख्यात-ज्ञातकुलावतंस सकलत्रैलोक्य-कल्पान्तर-
स्फार-क्रूरतरज्वरस्मरतरत्संरब्धरक्षारत ! ॥२७॥

इस प्रकार अपूर्व प्रतिभा के धनी आचार्य जिन प्रभसूरि के स्तोत्र अत्यन्त महनीय गुणों से मण्डित हैं। इनका स्थिति-काल १३०८ ई. का है।

११—वीरजिन-स्तोत्र—श्रीसोमतिलक सूरि

कविवर सोमप्रभसूरि के पट्टधर, १३वीं शती के समर्थ आचार्य श्री सोमतिलक सूरि ने अन्यान्य अनेक ग्रन्थों के अतिरिक्त 'वीरजिनस्तोत्र' के नाम से चित्रकाव्यात्मक स्तोत्र बनाया है। इसमें विविध दल वाले विभिन्न कमल-बन्धात्मक पद्य हैं। कवि ने स्वयं कहा है—

चतुरष्ट-षोडश-द्वात्रिंशच्चतुरधिकषष्टिदलं कलितम् ।
श्रीवीरस्तुति-कमलं मदयतु सहृदयजनालि-कुलम् ॥१०॥

इस स्तोत्र के प्रत्येक चरण के प्रथम अक्षरों का चयन करने पर एक पद्य बनता है जिसमें गुरुनाम, कविनाम और स्तोत्र—प्रकार का निर्देश किया गया है—

श्रीसोमप्रभ-सूरीश-पादाम्भोज-प्रसादतः ।
श्रीसोमतिलकसूरिरकृत स्तुति-पङ्कजम् ॥

इनके अन्य स्तोत्र भी रचना-वैशिष्ट्य के कारण स्पृहणीय हैं।

१२—जिनस्तोत्ररत्नकोश—मुनि सुन्दरसूरि

मुनि सुन्दरसूरि सहस्रावधानी थे। आपने 'जिन स्तोत्ररत्नकोश', जिनस्तोत्र महाह्रद, सूरिमन्त्रस्तोत्र, तपागच्छपट्टावली और 'त्रिदशतरङ्गिणी' आदि ग्रन्थों की रचना की थी। चौदहवीं शती के प्रथम चरण में आपने जो विज्ञप्ति-काव्य पत्र के रूप में लिखकर अपने गुरु देवसुन्दर सूरि के पास भेजा था, उसके सम्बन्ध में हर्षभूषणमुनि ने 'श्राद्ध-विधि-विनिश्चय' में लिखा है कि वह १०८ हाथ लम्बा था और उसमें अनेक चित्रकाव्य अङ्कित थे। उपर्युक्त स्तोत्र भी उसी में था। सम्पूर्ण त्रिदशतरङ्गिणी में लिखित ऐसे स्तोत्रों में ३०० चित्र बन्धों की योजना थी, जिनमें—प्रासाद, पद्म, चक्र, चित्राक्षर, अर्धभ्रम सर्वतोभद्र, मुरज, सिंहासन, अशोक, भेरी, समवसरण, सरोवर, अष्टमहाप्रातिहार्य आदि विशिष्ट हैं।

१३—विज्ञप्ति-त्रिवेणी—उपाध्याय श्री जयसागर

सन् १४२७ के निकट वर्तमान उपा० श्री जयसागर ने इस त्रिवेणी सरस्वती, गङ्गा और यमुना-नामक तीन वेणियों में विज्ञप्ति प्रेषित की है। इसमें मुक्तक-प्रासङ्गिक स्तोत्रों के रूप में छत्र, कमल, गोमूत्रिका, अर्धभ्रम, बीजपूर, आसन, चामर, अष्टारचक्र, स्वस्तिक आदि चित्रालङ्कारों की योजना की है। यह पूरी रचना १०१२ श्लोकप्रमाण है।

१४—चतुर्हारावली-चित्रस्तव—श्रीजयशेखर सूरि

प्रस्तुत रचना १५वीं शती के आरम्भ की है। यह चार हारावलियों में विभक्त है तथा प्रत्येक में १४-१४ पद्य हैं। इनमें क्रमशः वर्तमान, अतीत-अनागत और विहरमाण तीर्थङ्करों की चौबीसियों की स्तुतियाँ हैं। अन्तिम पद्य चारों हारावलियों के समान हैं। इसकी विशेषता यह है कि पूर्व और पश्चिम के एक-एक तीर्थङ्कर नाम के अक्षररूप हार से यह ग्रथित है। चार-चार चरणों के आद्यक्षरों से 'श्रीऋषभ', अन्त्याक्षरों से 'महावीर' आदि नाम निकलते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक हारावली का १३ वाँ पद्य अन्य चित्रबन्धों की भी सृष्टि करता है, जिनसे २४ दल कमल, स्वस्तिक, वज्र और बन्धूक-स्वस्तिक बन्ध बनते हैं।

१५—अष्टमङ्गल चित्र (बन्ध) स्तव—श्री उदय माणिक्य गणि

दस पद्यों से निर्मित यह स्तव जैन धर्म में

साध्वीरत्न कुसुमवती अभिनन्दन ग्रन्थ
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रसिद्ध १—दर्पण, २—भद्रासन, ३—शराव-सम्पुट ४—मत्स्ययुगल, ५—कलश, ६—स्वस्तिक ७—श्री वत्स और ८—चामरयुगल' की अष्टमङ्गलों की आकृतियों में बनाये गये स्तुति-पद्यों से अलंकृत है। इस प्रकार के आकार-चित्र-पद्य कवि के द्वारा स्व-प्रतिभा से प्रथम ही निर्मित हुए हैं। इन पद्यों के पठन का क्रम कवि ने नहीं दिखलाया है। अतः हमने अपने ग्रन्थ "चित्रालंकार-चन्द्रिका" में इनके लक्षण-पद्य बना दिये हैं। रचना अत्युत्तम है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

चन्द्रातपप्राय सुकीर्तिरामं, चन्द्रानन सारगुणाभिरामम्।
यः स्तौति चन्द्रप्रभमस्तसारं, यमी स आप्नोति भवाब्धि पारम् ॥३॥

इसका निवेश 'शराव-सम्पुट' में किया गया है। रचनाकार का समय १५ वीं शती माना गया है।

१६—शतदल कमल बन्धमय-पार्श्वजिनेश्वर—स्तुति श्रीसहजकीर्ति गणि

यह स्तुति २६ पद्यों में रचित है जिनमें २५ पद्यों से १०० दल वाले कमल की आकृति में बन्ध-पूर्ति की गई है तथा अन्तिम पद्य पुष्पिका रूप है। यह स्तोत्र लोधपुर (गुजरात) में एक प्रस्तर खण्ड पर उत्कीर्ण है। कुछ अंश खण्डित भी हो गया है, जिसकी पूर्ति हमने अपने शोध-प्रबन्ध में कर आकृति-सहित मुद्रित किया है और लक्षण भी बना दिया है। इसका आद्यपद्य इस प्रकार है—

श्रीनिवासं सुरश्रेण्यसेव्यक्रमं,
वामकामाग्नि-सन्ताप नीरोपमम्।
माधवेशादि-देवाधिकोपक्रमं,
तत्त्वसंज्ञानविज्ञानभव्याश्रमन् ॥३॥

यहाँ कर्णिका में 'म' अक्षर के साथ अनुस्वार, विसर्ग अथवा केवलाक्षर सम्बुद्ध्यन्त आदि के रूप में पढ़ा जाता है जो चित्रकाव्य के लिये दोष नहीं माना जाता है। इसकी रचना १५४२ ई० में हुई है। छन्द प्रयोगों में वैविध्य है। प्रत्येक चरण को एक-एक दल में लिख कर अन्तिम अक्षर को श्लिष्ट बनाया है जो १०० बार पढ़ा जाता है। कवि ने पुष्पिका में लिखा है—

इत्थं पार्श्वजिनेश्वरो भुवनदिक्कुम्भ्यङ्कचन्द्रात्मके,
वर्षे वाचकरत्नसारकृपया राका दिने कार्तिके।
मासे लोद्रपुरैरस्थितः शतदलोपेतेन पद्मेन सन्—,
नूतोऽयं सहजादि कीर्तिगणिना कल्याणमालाप्रदः ॥२६॥

१७-१८—शृङ्खला और हारबन्धमय पार्श्वनाथ स्तोत्र—श्रीसमयसुन्दरगणि

सन् १५९४ से १६४३ ई० में विराजमान श्री समयसुन्दर गणि ने अनेक स्तोत्रों की रचना की है। उनमें उपर्युक्त दो स्तोत्र चित्र बन्धमय हैं। ये 'समय-सुन्दर-कृति-कुसुमाञ्जलि' में नाहटा-बन्धु द्वारा प्रकाशित हैं।

१९—सहस्रदल- कमल- बन्धरूप- अरनाथ स्तव— श्री वल्लभ गणि

वनवैभवात्मक चित्रबन्ध काव्यों की परम्परा में आश्चर्यकारी कीर्तिमान स्थापित करने वाला यह स्तोत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण है। खरतरगच्छ के ज्ञानविमल मणि के शिष्य, वाचक श्रीवल्लभ गणि ने इस स्तोत्र में अरनाथ स्वामी की स्तुति की है। १००० दल के कमल में ५५ पद्य समाविष्ट है। प्रत्येक पद्य की वर्ण योजना इस प्रकार की गई है कि दो-दो अक्षरों के बाद तीसरा अक्षर 'र' ही आता है जो कर्णिका में श्लिष्ट होकर एक हजार बार पढ़ा जाता है। इस महान् प्रयास की सिद्धि के लिये कवि ने 'एकाक्षरी कोश' का भी आश्रय लिया है। लेखक ने इस पर स्वोपज्ञ वृत्ति भी बनाई है। हमने इसके खण्डितांशों को पूर्ण करके आकृति के अभाव की भी पूर्ति की है तथा पठन-प्रक्रिया ज्ञान के लिये लक्षण भी बनाया है। द्रष्टव्य—'संस्कृत साहित्य में शब्दालंकार' शीर्षक शोध-प्रबंध। इसका प्रथम पद्य इस प्रकार है—

असुर-निर्जर-बन्धुर-शेखर-प्रचुरभव्यरजोभिरयं जिरम्।
क्रमरजं शिरसा सरसं वरं,
जित-रमेश्वर-मेदुर-शङ्करम् ॥१॥

साध्वीरत्न कुसुमवती अभिनन्दन ग्रन्थ
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०—**शान्ति-जिन-स्तुति—(महास्वस्तिक बन्धमयी) —अज्ञात कवि**

किसी अज्ञात रचनाकार ने इस स्तुति का निर्माण किया है। इसके पद्यों से "महास्वस्तिक-बन्ध' की रचना होती है। आकृति में स्वस्तिक, कोणयष्टि, परिधि और विदिक् चतुष्कोणों का समावेश है। सन्धि स्थल और कर्णिका में निहित अक्षर श्लिष्ट हैं। उदाहरण के लिये एक पद्य दर्शनीय है—

कल्याणकेलिकदलीगृहसंनिवासं,
संसारपारकरणैककला विलासम्।
संवेगरङ्ग गणसंनिहितप्रियासं,
संसारिणां सुखकरं निखिलं जिनेनम् ।।

इस स्तुति का चित्राकार ही प्राप्त हुआ है और उसके कोने कट गये हैं, तथापि हमने इसकी पूर्ति करके लक्षण-सहित "सङ्गमनी" पत्रिका में—"चित्रबन्ध साहित्ये स्वस्तिक बन्धाः" नामक लेख में प्रकाशित किया है।

२१—**पार्श्वनाथ-स्तव—जिनभद्र सूरि**

सन् १६३३ ई० के निकट १८ पद्यों में इस स्तव की रचना हुई है। इसमें जिन चित्रबन्धों की रचना हुई है, उसका निर्देश कवि ने प्रथम पद्य में ही इस प्रकार कर दिया है—

चक्रेण ध्वजचामरे सुरुचिरे छत्रोत्पले दीपिका—
मुद्रामासनदर्पणौ च दधता श्रीवत्सशङ्खावपि।
घण्टाहारलतां विमानमनघं सत्तोरणं स्वस्तिकं,
प्रेङ्खन्तं कलशं सुरेन्द्रसहितं श्रीपार्श्वनाथं स्तुवे ।।१।।

शेष १८ पद्यों से १८ बन्ध बनते हैं। 'दीपिका-बन्ध' का पद्य इस प्रकार है—

सदाससमसमापाय-हरामाय-वचस्तव।
वरानराणां धीराणां स्तुत्यराव श्रये घनम् ।।७।।

२२—**नागपाशबन्धमय - महावीर - स्तव—इन्द्र-सौभाग्यगणि**

सत्रहवीं शती में ९ पद्यों में इन्द्रसौभाग्यगणि ने इसकी रचना की है। अजितसेन ने 'अलङ्कार-चिन्तामणि' में जो 'नागपाश चित्रबन्ध' दिया है, उसकी अपेक्षा इसकी रचना-पद्धति विशिष्ट है। इसका प्रथम पद्य इस प्रकार है।

श्रीमद्वीरजिनाधीशं शङ्करं जगदीश्वरम्।
रम्यच्छवि-कनकाभं भजध्वं सुरपूजितम् ।।

२३—**साधारण-जिनस्तव—अज्ञात कर्तृक**

यह स्तुति किसी प्राचीन आचार्य द्वारा अनेक विध चित्रबन्धों से निर्मित है। इसमें छत्र, सिंहासन, चामर आदि के चित्रबन्ध पद्य बनाये हैं। ऐसे ही कुछ अन्य नवीन बन्धों की सृष्टि में भी कवि ने मौलिकता प्रदर्शित की है और इसके अनुकरण की प्रेरणा भी दी है। यह स्तुति अप्रकाशित है और हमें भी पुण्यविजय जी महाराज द्वारा प्राप्त हुई थी। एक-दो पद्य उदाहरण के लिए दर्शनीय हैं—

तपोवीर रमाधीश शर्म-कानन-वारिद।
दक्ष कक्ष क्षमाक्षन्तः शमिशैक्षविभो जय ।।१।।
(छत्रबन्ध)

देवदेव स्फुरज्ज्ञान मनोरम-महोदय।
यशसा सारयत्वार्य जय संनय गीश्चिरम् ।।७।।
(पूर्णकलश बन्ध)

२४—**चतुर्विंशति-जिनस्तुति—विविध चित्रबन्धमय—अज्ञातकर्तृक**

यह स्तुति भी किन्हीं प्राचीन आचार्य द्वारा निर्मित है। इसमें—'ओङ्कार, ह्रीङ्कार, नमः, शङ्ख, सुदर्शनचक्रबन्ध, हार, गोमूत्रिका, दर्पण, सुसक, रवि, चन्द्र, वज्र, बीजपूर, खड्ग, शर, धनुष्, छुरिका, हल, कमल, गदा, नागपाश, तूणीर, स्वस्तिक और त्रिशूल' आदि चित्र-बन्धों के पद्य दिये हैं।

यह स्तुति अपने विविध नये-नये बन्धों की निर्मिति से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह भी अब तक अप्रकाशित है और हमने इसका सम्पादन किया है। इसके एक-दो पद्य इस प्रकार हैं—

साध्वीरत्न कुसुमवती अभिनन्दन ग्रन्थ
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुक्तेः पदं विपदमानवदानधर्मं,
मायाभिमानदजनप्रिय लब्धशातम् ।
त्वं देहि विश्वततकान्तिविराजमानं,
कासारजन्ममुखयत्नकरोदयाय ॥२॥ (ह्रीं-बन्ध)
कलुषपङ्खरांशनिभं जिनं,
नमत पारगतं नलिनद्युतिम्
जनिमहीरूह-मत्तगजोपमं,
कजमुखं विमलं सदयं सदा ॥३॥

अन्य अप्रकाशित चित्र-बन्धमय स्तुति-स्तोत्र

भारतीय वाङ्मय की इस अभिनव-शैली को उर्वरित रखने के अनेकानेक जैन आचार्यों और कवियों ने पर्याप्त प्रयास किया है। खेद का विषय यह है कि इस दिशा में विद्वानों का विशेष ध्यान और प्रयास न होने से शताधिक स्तुतिकाव्य आज भी अप्रकाशित और अपरिचित पड़े हुए हैं। हमने इस दिशा में जब प्रयास किया तो कुछ स्तोत्र हमें और भी प्राप्त हुए हैं, जिनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं—

१. जिनस्तुति–अनेकचित्रबन्धमयी-उदयवल्लभ-गणि, २. श्रीपार्श्वनाथस्तव–कल्पवृक्षबन्धमय, ३. पार्श्वनाथस्तव–३२ दलकमलबन्धमय, ४. चित्र-बन्ध स्तोत्र—गुणभद्र ५. साधारण जिनस्तव–अनेक बन्धमय, ६. श्री हीरविजय-सूरिस्वाध्याय—अनेक चित्रबन्धमय, ७. वर्धमानजिनस्तव ३२ दलकमल-बन्धमय, ८. पार्श्वनाथस्तोत्र-चलच्छृङ्खलागर्भ, ९. आदिनाथस्तव-कामघटबन्धमय, १०. सीमन्धर-स्वामिस्तवन-चक्रबन्धमय, ११. अजित-शान्तिस्तव-अनेक चित्तबन्धमय (अर्धमागधी) नन्दिषेणकृत तथा आधुनिक विभिन्न जैन पन्थानुयायी दिगम्बर, श्वेताम्बर (स्थानक एवं मन्दिरमार्गी) साधु, उपाध्याय और आचार्यों द्वारा निर्मित जैन स्तोत्र।

साम्प्रतिक स्थिति

वर्तमान वर्षों में भी वैसे तो यह धारा सूखी नहीं है, किन्तु क्षीण अवश्य होती दिखाई देती है। आचार्य श्री नथमल मुनि और आचार्य श्री तुलसी जी के मार्गानुयायी साधु-साध्वीजी द्वारा भी कुछ ऐसी स्तुतियों और प्रकीर्ण बन्धों की रचनाएँ हुई हैं जिन्हें उनके हस्तलिखित पत्रिकाओं में देखा जा सकता है।

श्वेताम्बर स्थानकवासी विद्वान साधुवर्ग की भी इसी प्रकार की रचनाएं यत्र-तत्र प्राप्त हैं। मूर्तिपूजक साधुवर्ग में भी ऐसी रचनाएं बनी हैं। इनमें मैं मुनि धुरन्धरविजय जी (श्री प्रेमसूरि जी के संघ के) का नाम देना चाहूँगा। इन मुनिजी में चित्र-बन्ध काव्य रचना का गुण सहज प्राप्त है। बहुत छोटी आयु में ही अपने आचार्यश्री प्रेमसूरिजी के प्रति दो 'विज्ञप्ति-पत्र' लिखे हैं जिसमें प्रथम में ५ चित्रबन्ध और द्वितीय में ३५० चित्र-बन्धों की योजना है। भटेवा-पार्श्वनाथ-चित्र-स्तोत्र (अष्टप्रातिहार्य-स्तव) इनका महत्वपूर्ण है। 'अजित शान्ति-स्तव' के चित्रबन्धों का उन्मीलन भी आपने ही किया है, जिसका संशोधन सम्मान्य श्री पुण्यविजय जी महाराज के आग्रह से हमने किया था। इसी प्रकार स्व० मुनिराज श्री अभयसागरजी महाराज की प्रेरणा से कुछ जैन-स्तोत्रों की रचनाएँ की हैं, जिनमें 'भटेवा-पार्श्व जिन-चित्रस्तव' की सं. २०२४ में की है जिसमें—१२ दलकमल, दर्पण, श्रीवत्स, स्वस्तिक, सिंहासन, शरावसम्पुट, मत्स्ययुगल, कलश और छत्र-बन्ध हैं। इसमें ११ पद्य हैं।

चित्र-बन्धात्मक स्तोत्रों के परिसर में यह केवल 'आकार-चित्ररूप संक्षिप्त आकलन' है। चूंकि चित्रालङ्कार की परिधि में—स्वर, स्थान, वर्ण, गति, प्रहेलिका, च्युत, गूढ, प्रश्नोत्तर, समस्या, भाषा और आकार-चित्र एवं इनके अनेक भेद-प्रभेद भी आते हैं, अतः इन सभी प्रकारों को स्तुतियों का भी समावेश किया जाए तो यह जैन-सम्प्रदाय के एक महान् दाय को विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत कर संस्कृत-स्तुति-साहित्य की परम्परा में अभूतपूर्व कीर्तिमान स्थापित करने का गौरव प्राप्त कर सकेगा।

(शेष पृष्ठ ३७४ पर)

साध्वीरत्न कुसुमवती अभिनन्दन ग्रन्थ
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org